अध्याय 3

तबला एवं पखावज की रचना

तबला

तबला की उत्पत्ति के बारें में यह मशहूर है कि अमीर खुसरों ने पखावज के दो हिस्से करके तबले का रूप दे दिया। पखावज से काटे गये इस वाद्य को ''तब्ल'' या ''तबला'' कहा गया जिसका फ़ारसी भाषा में शाब्दिक अर्थ है – जिसका मुँह ऊपर की ओर हो और उसका ऊपरी भाग सपाट हो। शायद इसीलिये इस वाद्य का नाम ''तबला'' प्रचलित हुआ।

कहते हैं कि अमीर खुसरों ने इसका आविष्कार 13वीं शताब्दी में किया परन्तु 13वी शताब्दी से 18वीं शताब्दी तक किसी तबला वादक का नाम उल्लेखित नहीं प्रतीत होता है। निष्कर्ष स्वरूप यह कहा जा सकता है कि 16वीं शताब्दी के आसपास पखावज के दो भाग करके इसका नाम तबला रखा गया और इसमें उचित संशोधन 18वीं शताब्दी के सिद्वार खां द्वारा किया और तभी से गायन, वादन एवं नृत्य में तबले का प्रयोग प्रारम्भ हुआ।

तबला और उसके अंग

तबले के अंग

तबले के मुख्य दो अंग होते हैं। ''बांया'' और ''डग्गा'' या मांडिया भी कहते हैं, जिसे बांये हाथ से बजाते हैं और दांया जिसे दाहिने हाथ से बजाया जाता है। कई कलाकार बांये को दांये हाथ से और दांये को बांये हाथ से भी बजाते हैं।

तबला

यह लकड़ी का बना होता है। आम, खेर, शीशम,

चंदन, बबूल, कटहल तथा बिजैसार में से किसी भी लकड़ी का बना होता है। इसके नीचे का भाग साढ़े 8 इंच, ऊपर की 7 इंच तथा ऊँचाई लगभग 1 फुट के करीब होती है। दांये तबले को नीचे स्वर अथवा तार सप्तक के स्वर में मिलाने के लिये इसके आकार में परिवर्तन भी होता है। जितनी भारी लकड़ी होगी उतनी ही गूंज अधिक उत्पन्न होगी।

बांया या डग्गा

पुराने ज़माने में बांया अक्सर मिट्टी का बना होता था परन्तु वर्तमान में बांया पीतल या तांबे का बनाया जाता है। कुछ लोग बांये तबले के पैंदे में सीसा या जस्ता डालकर भारी बनाते हैं जिससे गूंज अधिक रहे।

पुड़ी

तबले पर खाल लगी रहती है जिस पर उंगलियों से चोट करके बजाया जाता है। यह अधिकतर बकरे की खाल की बनायी जाती है। दांये तबले की पूड़ी कुछ पतले और बांये डग्गे की पूड़ी कुछ मोटे चमड़े की बनी होती है। पुड़ी को काम में लेने से पहले चूने के पानी में डूबोया जाता है फिर ही पुड़ी बनाई जाती है।

दाहिने तबले पर स्याही

स्याही बनाने के लिये लोहे की जली हुई राख को नीला थोथा में मिली हुई लेई में मिलाकर तैयार करते हैं। तबले के पुड़ी के बीच में स्याही लगाने वाली जगह को किसी धारदार चीज़ से खुरच कर उस जगह स्याही को लगाते हैं। एक तह लगाकर छोड़ देते हैं फिर सूखने पर कसौटी के पत्थर से खूब रगड़ते हैं। फिर इसके सूखने पर थोड़े से कम घेरे में पुनः स्याही को लगाकर वही प्रक्रिया दोहराई जाती है। इस प्रकार हर बार स्याही की तह को छोटा करके अन्त में लगभग आधा इंच व्यास की स्याही रखकर पूरी स्याही की घुटाई करते हैं। पतली स्याही के कारण तबले का स्वर ऊपर बोलता है और ज्यादा स्याही लगाने से तबले का स्वर नीचा बोलता है। जितनी अधिक घुटाई होगी तबला उतना ही अच्छा बोलेगा।

बांये डग्गे पर स्याही

बांये डग्गे पर स्याही लगाने का तरीका भी तबले के अनुसार ही होता है मगर तबले में स्याही पुड़ी के बीच में लगाई जाती है मगर बांये डग्गे में स्याही पुड़ी के बीच में नहीं लगाकर थोड़ा किनारे की और लगाई जाती है।

द्वाल और गजरा

पुड़ी को चमड़े की पट्टीयों से बने हुए सिंगार या गजरे में गूंथ देते हैं। इस गजरे में 16 घर होते हैं और इन 16 घरों के बीच से चमड़े की बद्दी या द्वाल डाल देते हैं। यह द्वाल या बद्दी भैंस के कच्चे चमड़े से भी बनाई जाती है और पके चमड़े से भी बनाई जाती है।

गट्टे तथा गुड़री

तबले के नीचे एक गोल चमड़े का पहिया सा होता है। द्वाल के ऊपर गजरे में होकर नीचे इस गुड़री में होकर पूड़ी को कस देते हैं। बद्दी या द्वाल को कसा या ढीला किया जाता है। गट्टे तीन इंच लम्बे और एक इंच मोटे होते हैं। इन गट्टों को ऊपर–नीचे करने से बद्दी ढ़ीली या टाईट होती है जिससे तबले का सुर ऊपर–नीचे मिलाया जाता है।

किनारी या चांटी और लव या मैदान

पुड़ी पर गजरे से ऊपर चारों ओर लगभग आधा इंच चौड़ी एक चमड़े की गोट लगी रहती है जिसे किनारी

या चांट कहते हैं। इस किनारी तथा स्याही के बीच करीब 1 इंच चौड़ा पूड़ी का भाग रहता है जिसे लव या मैदान कहते हैं।

इंडोरी

यह मूंज या कपड़े की बनी गोल पहिया जैसा होता है जिस पर तबला और बांया (डग्गा) रखा जाता है। जिससे गूंज भी बढ़ती है और तबला फिसलता भी नहीं है।

मृदंग, खोल या पखावज

यह माना जाता है के पखावज भगवान गणेश का प्रिय वाद्य है। पखावज कई नामों से जाना जाता है –पुष्कर, मृदंग, मृदल आदि आदि। पौराणिक पखावज वाद्य ध्रवपद, धमार गायकी एवं वीणा वादन के साथ ताल–वाद्य के रूप में बजाया जाता है। पखावज की आवाज़ बहुत ही धीर गंभीर होती है। तबला वादन से पखावज वादन की वादन विधि अलग होती है। पखावज पर जो ताल बजाई जाती है उनके बोल खुले रूप में होते हैं।

'पखावज', 'मुरज' और 'मर्दल', ये नाम भी 'मृदंग' के ही हैं। इस प्रकार के विभिन्न नाम और उनकी आकृतियों का वर्णन ग्रन्थों में मिलता है। 'मृदंग' का विशेष प्रचार दक्षिण–भारत में रहा जिसे वहाँ 'मृदंगम्' कहा जाता है। कुछ समय बाद उत्तर भारत के संगीतज्ञों ने 'मृदंग' से मिलता–जुलता प्रकार बनाकर उसका नाम 'पखावज' (पक्ष वाद्य) रख लिया। 'पखावज' पर अनेक कठिन तालों का प्रयोग हुआ करता था। चौताल, धमार, ब्रह्म, रूद्र, विष्णु, लक्ष्मी, सवारी इत्यादि तालें इस पर बजाई जाती थीं। किन्तु जब से तबले का आविष्कार हुआ, मृदंग का प्रचार बहुत कम हो गया। अब तो मृदंग के दर्शन प्रायः मन्दिरों या कीर्तन–मंडलियों में ही होते हैं। बंगाल की ओर 'मृदंग' को 'खोल' कहते हैं।

प्रसिद्ध पखावजियों में ला. भवानीप्रसाद सिंह को भातखंडे जी ने अप्रतिम पखावजी कहकर संबोधित किया है। प्रसिद्ध पखावजी कुदऊसिंह इन्हीं के शिश्य थे। अवध के नवाब द्वारा उन्हें 'कुँवरदास' की पदवी प्राप्त हुई थी। कहा जाता है कि एक बार वाजिदअली शाह की एक महफ़िल में कुदऊसिंह व जोधसिंह पखावजी को राजा ने दस हज़ार रूपये की थैली उनकी कला पर प्रसन्न होकर पुरस्कार में दी थी। इनके पश्चात् ताज ख़ाँ (डेरेदार), भवानीसिंह, ख़लीफा नासिर खाँ इत्यादि पखावजी प्रसिद्ध हुए।

इनके अलावा पखावज (मृदंग) के मुख्य कलाकारों में नाना, पानसे, मक्खन जी, घनश्याम जी, पर्वतसिंह, गुरूदेव पटवर्द्धन, गोविन्द राव बुरहानपुरकर, अम्बादासपन्त आगले, अयोध्याप्रसाद, सखाराम,

पुरुषोत्तमदास और राजा छत्रपति सिंह, रामशंकर 'पागलदास', अर्जुन सेजवाल तथा गोपालदास आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

पखावज की बनावट

पखावज का बाह्य रूप इसका शरीर कहलाता है, जो आकार में इस प्रकार होता है – इसके दो मुँह होते हैं, दाहिना और बाँया। दाहिना मुँह छोटा होता है जिसका व्यास 7 से 8 इंच होता हैं। बाँया मुँह थोड़ा बड़ा होता है जिसको व्यास 9 से 10 इंच होता है। पखावज की पूरी लम्बाई 2¼ से 2½ फीट होती है। मुख्यतः इसके आठ अंग होते हैं। यथा –

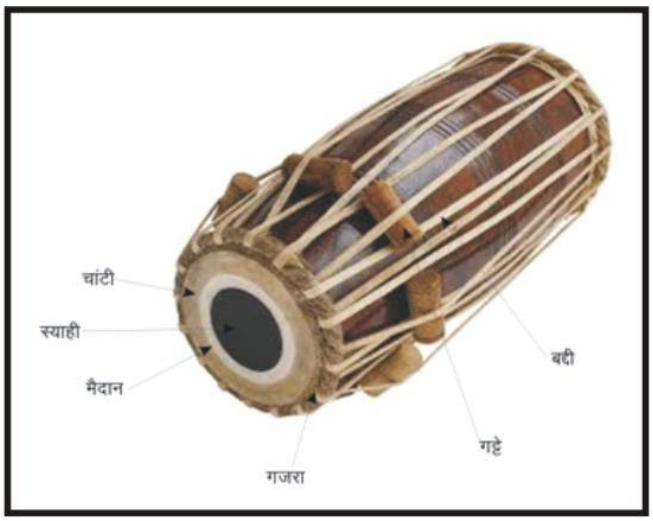

(1) शरीर

इसका शरीर एक ही लकड़ी का बना होता है। लकड़ी काथे या विजय साल की अच्छी मानी जाती है। आम और सुपारी की लकड़ी का उपयोग भी पाया जाता है। पखावज के निर्माण में जो लकड़ियाँ काम में लाई जाती है, वे प्रायः बड़ौदा, पूना, नासिक, अहमदाबाद के क्षेत्र की होती है।

(2) पुड़ी

पखावज के दोनों मुँह (दायाँ–बाँया) बकरे की खाल से मढ़े जाते हैं। यह चर्माच्छादन 'पुड़ी' के नाम से जाना जाता है। 'पुड़ी' शब्द संस्कृत के 'पुट' शब्द से निकला है।

(3) स्याही

मृदंग के दाहिने मुख पर जो गोल आकार में काला मसाला लगा होता है, वह करीब 3 इंच व्यास में होता है। उसे स्याही कहते हैं। यह स्याही ज्वालामुखी पहाड़ के पत्थर से बनती है और सीसा से भारी होती है। स्याही का उपयोग पखावज के कतिपय बोलों की स्पष्ट ध्वनि के लिये होता है। ढोलक आदि वाद्यों पर यह स्याही नहीं होती। पखावज के बायें भाग पर मढ़े हुए चमड़े की भीतर की ओर किसी प्रकार के मसाले का लेप नहीं किया जाता है। बाँयी पुड़ी पर गेहूँ के आटे का लेप (लुगदी) लगाया जाता है और इसे कम–ज्यादा करके नाद (स्वर) उत्पन्न किया जाता है।

(4) किनार

पुड़ी के ऊपर चारों तरफ लगी पट्टी किनार कहलाती है। इसे 'चाँटी' भी कहा जाता है।

(5) बद्दी

दोनों पुड़ियों को कसने के लिये जिस चर्म–रज्जू का उपयोग किया जाता है, वह 'बद्दी' कहलाती है। बद्दी भैंस के चमड़े की होती है। यह इतनी मजबूत होती है कि गट्टे के तनाव को सहकर टूटती नहीं है। बद्दी को 'दुआल' भी कहा जाता है।

(6) गजरा (गोट)

पुड़ी के चारों ओर जो गूंथा हुआ चमड़ा लगा रहता है, उसे गजरा या गोट कहते हैं। गोट में से होकर

चमड़े की बद्दियाँ निकलती हैं, जो पुड़ियों को एक–दूसरे से सम्बद्ध रखती है।

(7) लव या मैदान

पखावज की पुड़ी के जिस भाग पर स्याही और पट्टी (चाँटी) लगी रहती है, उसके बीच का हिस्सा लव या मैदान कहा जाता है।

(8) गट्टे

चर्म–रज्जू या बद्दी के नीचे छोटे–छोटे लकड़ी के गोल (बेलन के आकार में) जो टुकड़े लगे रहते हैं, वे गट्टे कहलाते हैं। इन गट्टों की सहायता से पखावज को वांछित स्वर में मिलाया जाता है। गट्टे लकड़ी के बने होते हैं।

पखावज की इस सम्पूर्ण रचना प्रक्रिया को पखावज का 'मढ़ना' कहा जाता है। पखावज के निर्माण में एक और इस विशेषता पर भी हमारा ध्यान जाता है कि ऐसे कुछ पारंपरिक भारतीय वाद्य हैं, जिनका निर्माण लकड़ी से होता रहा, लेकिन आज उनकी रचना लोहे के पतरे से होने लगी है। तबला, ढोलक आदि इसके उदाहरण है। किन्तु पखावज या मृदंगम् की रचना में आज भी इन्हीं पारंपरिक लकड़ियों का उपयोग अनिवार्यतः होता है, कोई अन्य धातु या पदार्थ उनकी जगह नहीं ले सका है।

पखावज ढोलक के समान होती है परन्तु उसका एक मुँह छोटा और दूसरा मुँह बड़ा होता है। बजाते वक्त बड़ा मुँह का हिस्सा बाँये हाथ से और छोटे मुँह के हिस्से को दाँये हाथ से बजाया जाता है। दोनों मुँह पर चमड़े की पुड़ी लगी होती है। पखावज में छोटे वाले मुँह के हिस्से में चमड़ा मढ़ा होता है और उस पर स्याही लगी होती है। दूसरे बड़े वाले मुँह की तरफ चमड़े पर आटा लगाया जाता है। दानों पुड़ीयों को कसने के लिये गजरा होता है और इस गजरे में से चमड़े की बद्दी (रस्सी) लगी होती है। अगर दायाँ तबला और बायाँ डग्गा, दोनों के निचले भाग मिलाकर एक जगह ढोलक की तरह रख दिए जाएँ, तो पखावज जैसा रूप ही बन जाता है। तबला और पखावज में एक भेद तो यह है कि पखावज में दायाँ और बायाँ अलग–अलग न होकर दोनों का आकाश (पोल) एक ही है। यही कारण है कि तबले की अपेक्षा पखावज में गूंज अधिक पायी जाती है क्योंकि एक तरफ़ थाप देने से दूसरी ओर गूँज स्वयं उत्पन्न होती है। दूसरा भेद तबला और पखावज में यह है कि तबले के बोल बजाने में अँगुलियों का काम अधिक होता है तथा थाप का प्रयोग कम होता है किन्तु पखावज में थाप का प्रयोग अधिक होता है। पखावज में बायीं ओर गीला आटा लगाया जाता है, जब स्वर नीचा करना होता है तो आटा कुछ अधिक लगाते हैं, ऊँचा स्वर करने के लिये आटा कम कर देते हैं।

पखावज की संरचना

पखावज दक्षिण भारत के प्राचीन वाद्य 'मृदंगम का परिवर्तित एवं संस्कारित रूप है। वाद्यवृन्द में इसका महत्त्व बताते हुए सुप्रसिद्ध पखावज वादक पागलदासजी ने लिखा है कि पखावज सर्वाधिक सजीव वाद्य है और सभी ताल वाद्यों का जनक है। पखावज के बोलों व बंदिशों में ध्रुपद की गायन शैली की लयकारियाँ परिलक्षित होती है। नृत्य की संगत में भी इसका प्रयोग होता है। यह एकल व संगत दोनों में उपयोगी वाद्य है।

नटराज – मुक्तेश्वर के मंदिर

इसकी संरचना का एक सुदीर्घ इतिहास है, जो वैदिक युग के मृदंगम् से चलकर वर्तमान युग के पखावज वाद्य तक आता है। इस वाद्य का दक्षिण भारतीय मूल नाम मृदंगम् है। यही मृदंगम जब भारत के अन्य प्रान्तों में अपनी लोकप्रियता के कारण व्यापक रूप में फैला तो अनेक नामों से जाना जाने लगा। इस वाद्य में न केवल नाम बदले बल्कि इसके रूप–स्वरूप में भी कई परिवर्तन–परिवर्धन हुए। तदनुसार दक्षिण भारत को छोड़कर देश के अन्य प्रान्तों में जहाँ मृदंगम का अविकल रूप स्वीकृत हुआ, वहाँ इसे मृदंग कहा जाने लगा। इसी 'मृदंग' को सामान्यतः पखावज भी कहा जाता है। इसके अन्य नाम हैं – मुरज, मर्दल, खोल। इस वाद्य की प्राचीनता का प्रमाण ऋग्वेद (5/33/6) से मिलता है। इसका मूल रूप भगवान शिव का डमरू माना जाता है। प्राचीन समय में यह 'पुष्कर' नाम से भी जाना जाता था। इसके पुरातन रूप थे – हरीतकी, जवाकृति और गोपुच्छाकृति। हरड़ के आकार वाला मृदंग हरीतकी, जव के आकार वाला यवाकृति अथा जवाकृति एवं गाय की पूँछ के आकार वाला गोपुच्छाकृति होता था। इस वाद्य का शरीर मृद् (मिट्टी) से बना होने के कारण इसे मृदंग (मृद–अंग) कहा जाता था।

पखावज वाद्य मृदंगम् के समान ही है, किन्तु मृदंगम् के आकार से यह वाद्य कुछ बड़ा होता है। मृदंगम् को पखावज के रूप में नाम देने का श्रेय मुसलमान संगीतकारों को दिया जाता है। माना जाता है कि आगे चलकर इसी पखावज वाद्य के बीच में से दो टुकड़े कर दिये गये, जो तबला के रूप में आज हमारे सामने हैं और तबले के दाँए–बाएँ कहलाते हैं। किन्तु तबला के उद्भव की यह मान्यता कितनी सही है, कहा नहीं जा सकता। कारण कि तबला वाद्य के मौलिक रूप का पता हमारे यहाँ बहुत प्राचीन समय (छठी शताब्दी) से चलता है। इस संबंध में हमें भुवनेश्वर स्थित श्री भुवनेश्वर के मन्दिर में सुविराजित नटराज की अष्टभुज मूर्ति तथा मुम्बई के बादामी मंदिर की नटराज की षड़–भुज प्रतिमा अध्ययनीय हैं। इन मूर्तियों को लेकर जो विवरण हमारे सामने आया है, वह इस प्रकार है–

भुवनेश्वर में श्री मुक्तेश्वर के मंदिर में एक नटराज की अष्टभुजी मूर्ति प्राप्त होती है। इसमें नटराज के विभिन्न हाथों को नृत्य की भिन्न–भिन्न मुद्राओं में दिखाया गया है। इसके पूर्व की ओर गणपति भी नृत्य में सहायक के रूप में वंशी बजाते हुए दिखाये गये हैं। इसी मूर्ति के बाँयी ओर चार पायों की चौकी पर एक पुरुष बैठा है, जो अपने हाथों से दो पुष्कर (ढोल) जैसे वाद्यों को बजाकर नटराज के नृत्य में लय तथा ताल को प्रदर्शित कर रहा प्रतीत होता है।

इस प्रकार नटराज की मूर्ति मुम्बई के बादामी के मंदिर में (छठी शताब्दी की) पाई जाती है। इस मूर्ति के छह हाथ हैं और प्रत्येक हाथ शास्त्रानुकूल शुद्ध नृत्य की मुद्रा में दिखाया गया है। इनमें सीधे लय की ओर के एक हाथ में त्रिशूल भी है। भगवान गणेश वंशी जैसा सुषिर वाद्य बजाते हुए मूर्ति के पार्श्व में खड़े दिखाये गये हैं। गणेशजी के समीप ही एक व्यक्ति झुकी मुद्रा में हाथों से एक ढोल बजा रहा है और एक ढोल उसे सामने रखा है। इन ढोलों को 'पुष्कर' कहते हैं। दोनों ढोल जो कि आकार में एक समान ही हैं और बादामी तथा मुक्तेश्वर के मंदिर में दिखाये गये हैं, वे ही आधुनिक दायाँ तबला और बाँये डग्गे के पूर्वज

प्रतीत होते है, जिनके विषय में यह झूठ प्रचार में आ गया है कि यवन काल में अमीर खुसरों ने मृदंग के दो भाग करके तबला वाद्य को जन्म दिया।

यह तो स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है कि मन्द्र ध्वनि में जितना मृदंगम् उपयोगी है, उससे किंचित् अधिक पखावज है। पखावज के ही दो और छोटे स्वरूप मिलते हैं, जो 'ढोलक' और 'नाळ' नाम से जाने जाते हैं। मृदंगम् वाद्य ज्यों–ज्यों छोटा होता गया, उत्तरोत्तर उसकी ध्वनि की गंभीरता में कमी आती गई। पखावज या मृदंगम् की तुलना में तबला वाद्य की ध्वनिगत विशेषता पर टिप्पणी करते हुए कहा गया है कि तबला और पखावज में एक भेद तो यह है कि पखावज में दाँया और बाँया अलग–अलग न होकर दोनों का आकार (खोल) एक ही है, और इस कारण तबले की अपेक्षा पखावज में गूँज अधिक पायी जाती है। पखावज पर एक तरफ थाप देने से दूसरी ओर गूँज स्वयं उत्पन्न होती है, जबकि तबला के वादन में ऐसा नहीं होता।

पखावज के बोल

प्रत्येक वाद्य के बोल अपने नाद की प्रकृति के अनुरूप होते हैं। पखावज पर दोनों पाटों (पुड़ियों) से निकाले जाने वाले 16 बोल होते हैं, जिन्हें पाट वर्ण अथवा पाटाक्षर कहा जाता है। संगीत रत्नाकर में इनका इस प्रकार वर्णन है –

डवर्जितः कवर्गश्च टतवर्गो रलावपि ।
इति षोड़श वर्णाः स्युरूभयोः पाटसंज्ञकाः।।

क–ख–ग–घ–ट–ठ–ड–ढ–त–थ–द–थ–न–म–र–ल यह 16 पाट वर्ण या पाटाक्षर होते हैं किन्तु ये 16 पाटाक्षर मुख्यतः मृदंग के हैं, जबकि पखावज के 13 बोल ही माने जाते हैं। यथा – ता–त–दी–धु–ना–धा–ड–हये–दी–ग–खिर्र–झें–म । ये 13 बोल मुख्य बोल माने गए हैं। आश्रित बोल 12 बताये गये हैं, जो इस प्रकार हैं – रॉ–क–ग–ण–धु–धी–ला–थेई–ड़ा–की–टी–थई ।

अभ्यासार्थ प्रश्न

अतिलघुत्तरात्मक प्रश्न

(1) 'तबला' किसका बना होता है ?

(2) तबले में स्याही का प्रयोग कहाँ होता है ?

(3) तबले की पुड़ी को किससे कसा जाता है ?

(4) तबले की पुड़ी में मैदान कहाँ होता है ?

(5) तबले के गट्टों की क्या उपयोगिता है ?

(6) पखावज कौनसी गायन–वादन शैली के साथ बजायी जाती है ?

(7) पखावज की पुड़ी पर आटा किस भाग पर लगाया जाता है?

(8) पखावज पर बजाये जाने वाले बोल किस तरह के होते हैं ?

(9) पखावज की उत्पत्ति किस काल की मानी जाती है ?

(10) उत्तर भारत में पखावज का चलन अधिक है या तबले का ?

लघुत्तरात्मक प्रश्न

(1) तबले में दायें–बांये से क्या तात्पर्य है ?

(2) तबले पर कौनसी ताल बजायी जाती है ?

(3) तबले की बनावट में पुड़ी किस स्थान पर होती है ?

(4) पखावज के दोनों मुँह कैसे होते हैं ?

(5) पखावज और तबले पे बजाये जाने वाले बोलों में क्या अन्तर है ?

निबंधात्मक प्रश्न

(1) तबले का सचित्र वर्णन कीजिये ?

(2) पखावज का सचित्र वर्णन कीजिये ?

(3) तबले व पखावज में क्या अन्तर है ?

प्रसिद्ध तबला वादक उ. ज़ाकिर हुसैन

पखावज वादक पं. भवानी शंकर

ताल वाद्य नगाड़ा